Inspira- Journal of Modern Management & Entrepreneurship (JMME)
ISSN : 2231–167X, General Impact Factor : 2.5442, Volume 08, No. 04, October, 2018, pp. 345-347

gEehj egkdk0; e i–fr&lkUn;

सुषमा सुखवाल*
डॉ. अनिता खुराना**

iLrkouk

प्रकृति अपने–आप में सुन्दर है और मानव–स्वभाव से ही सौन्दर्य–प्रेमी माना गया है। इसी कारण प्रकृति और मानव का सम्बन्ध उतना ही पुराना है, जितना कि इस सृष्टि के आरम्भ का इतिहास। सांख्यदर्शन तो मानव–सृष्टि की उत्पत्ति ही प्रकृति से मानता है। आधुनिक विकासवाद का सिद्धान्त भी इसी मान्यता को बल देता है। अन्य दर्शन पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि और आकाश नामक जिन पाँच तत्त्वों से सृष्टि की उत्पत्ति और विकास मानते हैं, वे भी अपने मूल स्वरूप में वस्तुतः प्रकृति के ही अंग है। यह मान्यता भी प्रचलित और प्रसिद्ध है कि साहित्य–सर्जन की प्रेरणा व्यक्ति को प्रकृति के रहस्यमय कार्यों एवं गतिविधियों को देखकर ही प्राप्त हो सकी थी। इस तथ्य में तनिक भी सन्देह नहीं है कि अपने आरम्भ काल में मानव की सहचरी और आश्रय–दात्री सभी कुछ एकमात्र प्रकृति ही थी। उसी की गोद में मानव–जाति ने जीना एवं प्रगति की राह पर चलना सीखा फलतः वैदिक काल के मानव ने चाँद, सूर्य, उषा, संध्या, नदी, वृक्ष, पर्वत आदि प्रकृति के विविध रूपों को देवत्व तक प्रदान कर दिया था। अनेक पशुओं तथा सांप जैसे जीवों में भी देवत्व के दर्शन किए। प्रकृति के प्रति देवत्व का यह भाव आज भी किसी–न–किसी रूप में हमारी अन्तश्चेतना में अक्षुण्ण बना हुआ है। आज भी हम उसके कई रूपों की पूजा–अर्चना करते है।

यह सब कहने का अभिप्राय केवल यह दर्शाना है कि मानव और प्रकृति का सम्बन्ध अनादि और चिरन्तन है। इसी कारण मानव–जीवन की महानतम उपलब्धि साहित्य और प्रकृति का भी प्रकृति के साथ उतना ही अनादि चिरन्तन और शाश्वत् सम्बन्ध है जितना कि मानव और प्रकृति का है। प्रकृति के कोमल–कान्त और भयानक मुख्यतः दो ही स्वरूप हैं। ये दोनों स्वरूप प्रत्येक मानव और विशेषकर कवि एवं साहित्यकार कोटि के मानव को आरम्भ से ही भावना का सम्बल प्रदान करते आ रहे हैं। वैदिक साहित्य में जहाँ प्रकृति को दैवी स्वरूपों में प्रतिष्ठित किया है, वहीं परवर्ती कवियों ने उसे उपदेशिका, पथप्रदर्शिका, प्रेमिका, माँ, सुन्दरी–अप्सरा आदि कितने ही रूपों में निरुपित किया है।

प्रकृति अपनी सगुण–साकार स्वरूपता एवं चेतना में आरम्भ से ही साहित्यकार के मन–मस्तिष्क पर प्रभावी रही है। उसे सहज सुन्दर और शाश्वत् की उपासना की प्रेरणा देती आ रही है। प्रत्येक युग के कवि और साहित्यकार ने किसी–न–किसी रूप में प्रकृति का दामन अवश्य ही थामा है। वैदिक साहित्य प्रकृति–चित्रण सम्बन्धी ऋचाओं और सूक्तों से ओत–प्रोत है तो परवर्ती लौकिक संस्कृत काल का साहित्य भी इसका अपवाद नहीं है।

---

* शोधार्थी, सम्राट पृथ्वीराज चौहान राजकीय महाविद्यालय, अजमेर, राजस्थान।
** सह आचार्य–संस्कृत, सम्राट पृथ्वीराज चौहान राजकीय महाविद्यालय, अजमेर, राजस्थान।

महाकवि कालिदास का "मेघदूत" प्रकृति–चित्रण से सम्बन्धित एक अद्वितीय काव्य है। बाणभट्ट की "कादम्बरी" से विशाल, विराट् और उदात्त प्रकृति–चित्रण को भला कौन भुला सकता है? संस्कृत में ऐसा एक भी कवि एवं साहित्यकार नहीं हुआ, जिसका मन–मस्तिष्क प्रकृति के रूपचित्रों के चित्रण में न रमा हो। पालि और प्राकृत के काल में भी मुक्त रूप से प्रकृति–चित्रण साहित्य का अंगभूत रहा। कवि का प्रकृति के साथ जितना सामंजस्य होता है उतना किसी ओर श्रेणी के मानव का नहीं होता है। वस्तुतः कवि का निर्माण जिन तत्त्वों से होता है, वे तत्त्व ही ऐसे हैं जोकि अन्तर्दृष्टि से प्रवाहित होते रहते हैं। प्रकृति नाना रूपों में अत्यन्त मनोहारी दृष्टिगोचर होती है, जिसमें वनस्पति जगत, पक्षिजगत, वन्यप्राणि जगत आदि हैं।

महाकवि नयचन्द्र का प्रकृति सौन्दर्य संस्कृत साहित्य के समुज्ज्वल द्वार का हीरक है, वे प्रकृति देवी के प्रवीण उपासक थे। उनकी सूक्ष्म रसदर्शिनी दृष्टि अत्यन्त व्यापक, सावधान और प्रकृति के मार्मिक रहस्यों की उद्भावना में पूर्ण समर्थ है। महाकवि नयचन्द्र द्वारा रचित हम्मीर महाकाव्य के सजीव प्रकृति–चित्रण यद्यपि कल्पना चक्षुदृश्य हैं, किन्तु उनकी मूर्तता, मनोहरता और सरसता वस्तुबिम्ब को ग्रहण करते हुए सहृदय के हृदय को सौन्दर्यानुभूति से भर देती है।

वसन्त ऋतु में मधुयुक्त भ्रमरियों का गुञ्जार लोगों के मन को किस प्रकार विकारयुक्त कर देता है –

"मधुकप्रसूनमधुपानवशादतिमात्रमत्तम् धुकृधुवतेः।

विनिशम्य झंकृतमरं दधिरे कति रे! न चेतसि विकारभरम्।"[1]

अर्थात् मधुयुक्त पुष्पों के मधुपान करने से अधिक मदमत भ्रमरियों के गुञ्जन को सुनकर किन के मन में विकार नहीं आ जाता था।

कोयल के द्वारा सम्पूर्ण जगत को काममय–सा बना दिया गया। इसका वर्णन कवि ने कितनी काव्य–पटुता से किया है –

"सहकारसारतरमञ्जरिकाग्रसनोल्लसन्मधुरिमाञ्चितया।

परपुष्ट्या कुसुंमकाण्डकरेऽरचि लोलयाप्यमखिलमेव जगत्।।"[2]

अर्थात् आम्रवृक्ष की मञ्जरियों को खाकर प्रचुर माधुर्य प्राप्त करने वाली कोयल के द्वारा मानों सम्पूर्ण जगत् कायमय बना दिया गया था।

कवि नयचन्द्र सूरि ने वसन्त ऋतु में विकसित होने वाले बकुल वृक्ष, चम्पक वृक्ष, पलाश वृक्ष, तिलक वृक्ष आदि का बड़ा मनमोहक चित्र हम्मीर महाकाव्य में प्रस्तुत किया है।

वसन्त ऋतु में लताओं को वनदेवियों की भाँति निरूपित कर उनका मानवीकरण किया है –

"विकसत्सुमस्तबकचारुकुचानवपल्लवाद्भुतकरक्रमणाः।

मधुमागताः समवलोकयितुं वनदेवता इव लता त्यरुचन्।।"[3]

अर्थात् वनदेवियों की भाँति लताएँ वसन्त को देखने के लिए आ गई थी और उनके खिले हुए पुष्प गुच्छ ही मानों उन्नत कुच थे और नये–नये पल्लव ही अद्भुत हाथ थे।

वनभूमि पर कामिनियों के नखाग्र से तोड़े गए पुष्प की पंखुड़ियाँ किस प्रकार मोतियों की भाँति सुशोभित हो रही थीं। कवि ने यहाँ पर वनभूमि की सुन्दरता का वर्णन बहुत ही खूबसूरती के साथ किया है –

"कामिनीकरजकोटिविलूनस्रस्तपल्लववनावनिपीठे

पुष्पराजिभिरराजत मुक्तावेणिवद् विपुलविद्रुमपात्रे।।"[4]

अर्थात् वनभूमि पर जब कामिनियों के नखाग्रों से तोड़े हुए पल्लव बिखरे हुए थे तो फूलों के समूहों से वह भूमि मूंगों से भरे पात्र में रखी हुई मोतियों की माला की भाँति शोभा दे रही थी।

भ्रमरों को कामदेव के बन्दूक की गोलियों के रूप में अतीव सुन्दर निरूपित किया गया है –

"मधुपानतः शिथिलितभ्रमरा भ्रमिरा बभुप्रतिवनं तरुषु।
गुलिकास्त्रकाभ्यसनमुन्नयतो गुलिका इव प्रसवचापविभोः।।"[5]

अर्थात् कामदेव मानो बन्दूक का अभ्यास करते हुए भ्रमर रूपी गोलियाँ चला रहे थे क्योंकि प्रत्येक वन में पेड़ों पर पुष्प मधुपान से ये भौंरे धीरे–धीरे संचरण कर रहे थे।

इस प्रकार हम यह कह सकते है कि नयचन्द्र सूरि के द्वारा रचित हम्मीर महाकाव्य में प्राकृतिक छटा को उकेरते हुए कई जीव–जन्तुओं का सजीव चित्रण किया गया है। इससे यह ज्ञात होता है कि प्रकृति में मनुष्य के समान ही वनस्पतियों एवं जीव–जन्तुओं के संरक्षण की आवश्यकता स्वीकार की गई है।

कवि सूरि द्वारा रचित प्रस्तुत महाकाव्य में प्रकृति के प्रत्येक रूप का अत्यन्त स्वाभाविक एवं मनोहारी रूप से चित्रण किया गया है। वन–पुष्पों की साम्यता हिन्दी के सुप्रसिद्ध लेखक "माखनलाल चतुर्वेदी" के पद्य से की गई है यथा –

"मुझे तोड़ लेना वनमाली, उस पथ पर देना तुम फेंक
मातृ–भूमि पर शीश चढ़ाने, जिस पथ जावे वीर अनेक।।"[6]

अर्थात् किसी पुष्प की यह अभिलाषा है कि वह वीर के चरण कमल पर चढ़कर अपने आपको गौरवान्वित अनुभूत करें।

मयचन्द्र सूरि भी उत्तम कोटि के काव्यकार है जिन्होंने प्रकृति–चित्रण की परम्परा को अपनाते हुए साहित्य के क्षेत्र में अपना अमूल्य योगदान दिया है।

lUnHkZ xzUFk lwph

❖ 1. हम्मीर महाकाव्य 5.9
❖ 2. हम्मीर महाकाव्य 5.10
❖ 3. हम्मीर महाकाव्य 5.34
❖ 4. हम्मीर महाकाव्य 5.74
❖ 5. हम्मीर महाकाव्य 5.20
❖ 6. माखनलाल चतुर्वेदी रचित कविता–पुष्प की अभिलाषा

♦❒♦